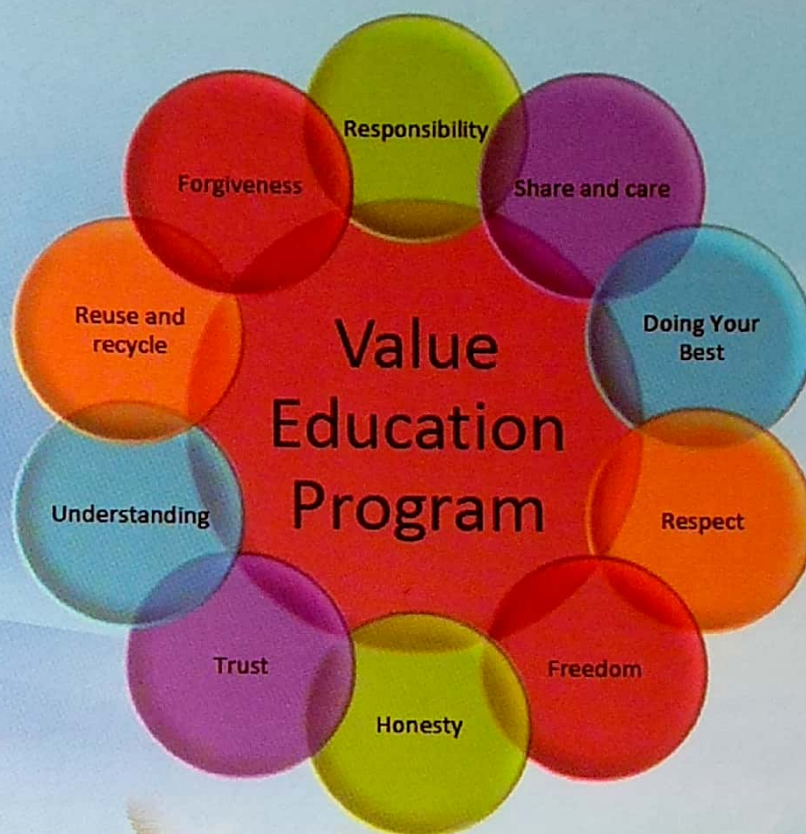


Education for Peace and Values

शांति एवं मूल्यों के लिए शिक्षा



Dr. Chandrakanta Jain

© डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर

Education for Peace and Values
शांति एवं मूल्यों के लिए शिक्षा

प्रथम संस्करण - 2016

ISBN : 978-81-89740-10-8

मूल्य - 600.00

विररक - प्रांजल प्रकाशन,
एकांकी मार्ग, सागर, मो. 7694052106

अक्षर संयोजन - रॉयल कम्प्यूटर्स
वनवे रोड, सागर (म.प्र.) 470 002
दूरभाष : 07582-244289, 9425452106

प्रकाशक - कृष्णा कम्प्यूटर्स, सागर

■ पुस्तक में लेखकों के विचार उनके अपने हैं,
सम्पादक किसी भी स्थिति में उत्तरदायी नहीं है।

शिक्षा और विद्या के समन्वय से व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास

बृजेश सिंह

शोधार्थी, योग अध्ययन विभाग
डॉ. हरीसिंह गौर वि. वि. सागर

डॉ. अरुण कुमार साव
सहायक प्राध्यापक, योग अध्ययन विभाग
डॉ. हरीसिंह गौर वि. वि. सागर

प्रस्तावना —

शिक्षा प्राप्त करने के लिए प्रशिक्षण का स्तर साधन परिस्थितियाँ एवं शिक्षार्थी का बौद्धिक स्तर सही होना पर्याप्त है। यह साधन जहाँ भी जुट जाएगे वहाँ शिक्षा का लाभ सफलता पूर्वक मिलने लगेगा। शिक्षा हमारे लौकिक जीवन की सुव्यवस्था में काम आती है। जानकारी बढ़ाने से सोचने की परिधि बढ़ जाती है। लिखने और बोलने की भाषा परिष्कृत होती है। अर्धोपार्जन की क्षमता बढ़ती जाती है। विभिन्न शिल्प एवं कला-कौशल अभ्यास में आते हैं। मस्तिष्कीय विकास की दृष्टि से अर्धोपार्जन जैसी आवश्यकता पूरी करने की दृष्टि से अति आवश्यक शिक्षा का विकास होना चाहिए इसमें दो राह नहीं हो सकती किन्तु इतना ही पर्याप्त नहीं भौतिक जानकारी से सम्बद्ध शिक्षा की आवश्यकता और उपयोगिता को हम जानते हैं। पर उसके दूसरे पक्ष को भूल जाते हैं। जिसके बिना हमारी ज्ञान-वृद्धि सर्वदा अधूरी अपंग बनी रहती है। ज्ञान की दूसरी धारा है—विद्या। विद्या का अर्थ है दृष्टि कोण का परिष्कार—चिन्तन और भावोल्लास में उत्कृष्टता का निखार। इसके बिना मनुष्य के अन्तराल में छिपी हुई रहस्यमय दिव्यता का विकास नहीं हो सकता। मानवता एवं महानता की आन्तरिक श्रेष्ठता का विकास जिस क्रम में मनुष्य की आकांक्षाएँ, विचार धाराएँ और गतिविधियाँ उच्चस्तरीय बनती हैं। गुण, वचन, कर्म में ऐसी विशेषताएँ दिखाई पड़ती हैं। जिनके सम्पर्क में आने—जाने वाला हर मनुष्य प्रसन्नता का अनुभव करता है, प्रकाश ग्रहण करता है।

इसी तरह ज्ञान के दो अंग हैं, एक शिक्षा दूसरा विद्या। शिक्षा वह है जो कालेजों में पढ़ाई जाती है, जिसे पढ़कर लोग ग्रेजुएट, क्लर्क, डॉक्टर, इंजीनियर, वकील, प्रोफेसर, अफसर आदि

बनते हैं। यह जीविकोपार्जन एवं लोक व्यवहार में निपुणता प्राप्त करने के लिए है, यह आवश्यक है। क्योंकि इसके बिना जीवन में स्थिरता एवं उन्नति का मार्ग नहीं खुलता। पर इससे भी आवश्यक विद्या है। जिस ज्ञान को प्राप्त कर मनुष्य अपनी मान्यताओं, भावनाओं, आकांक्षाओं एवं आदर्शों का निर्माण करता है, उसी ज्ञान को विद्या कहा जाता है। इसे प्राप्त करने का माध्यम स्कूल कॉलेज नहीं, वरन स्वाध्याय एवं सत्संग है, चिंतन और मनन से, साहित्य पढ़ने से, सज्जनों के साथ रहने से उनके अभिवचन सुनने एवं क्रियाकलाप देखने से विद्या का आविर्भाव होता है। जहाँ शिक्षा एवं विद्या दोनों का समावेश हो जाता है, वहीं स्वर्ग उत्पन्न हो उठता है। शिक्षा से सांसारिक सफलताएँ अवश्यम्भावी हैं, विद्याभ्यास से आन्तरिक गुणों का यथा-प्रेम, दया, करुणा, आदि का विकास असंदिग्ध रूप से होता है। जहाँ ये दोनों बातें मिल जाती हैं। आनन्द के फव्वारे छूटने लगते हैं, स्वर्ग बन जाता है। इसलिए शिक्षा अभ्यास के साथ-साथ विद्याभ्यास की आवश्यकता भी सर्वोपरी है। साधना, उपासना, आध्यात्मिक ज्ञान से ओत-प्रोत साहित्य के निरन्तर स्वाध्याय, मनन, चिंतन, व्रत, उपवास आदि की आवश्यकता शिक्षा से भी ज्यादा है। प्राचीनकाल के गुरुकुलों में शिक्षा सम्बन्धी विषय गौण माने जाते थे, आत्मविद्या के विषय अनिवार्य होते थे। मनुष्य के दार्शनिक स्वरूप को यथार्थ, शाश्वत और पूर्णानन्द की प्राप्ति का पाथेय माना जाता था, इस लिये पढ़ाई पर जोर दिया जाता था, जो व्यक्ति के आत्मगुणों को परिवर्द्धित करती थी। उसकी आवश्यकता आज भी उतनी ही नहीं बल्कि वर्तमान विकृत परिस्थितियों में तो उसमें भी अधिक है।

मनुष्य जीवन को समग्र सफलता के लिए उस ज्ञान की महती आवश्यकता है, जिसे विद्या के नाम से पुकारा जाता है—जिसके आधार पर गुण, कर्म स्वभाव द्वारा परिष्कृत व्यक्तित्व का निर्माण होता है। न केवल वैयक्तिक समृद्धि के लिए सुख शान्ति के लिए वरन सामाजिक सुव्यवस्था एवं प्रगति के लिए भी ऐसे ही परिष्कृत व्यक्तियों की आवश्यकता है। किसी राष्ट्र अथवा समाज का भवन व्यक्ति घटकों की ईंटों से चुना जाता है। जिस देश के नागरिक ओछे और निकृष्ट होंगे, वहाँ विविध-विधि संकट, विद्रोह अनाचार उभरते रहेंगे और गृह युद्ध जैसी स्थिती बनी रहेगी। अनाचार का जुड़वा भाई असहयोग है। जहाँ सहयोग नहीं वहाँ प्रगति कहाँ है ? दुष्प्रवृत्तियों रोष-प्रतिशोध उत्पन्न करती हैं फलतः क्लेश कलह के अनेकानेक दुर्भाग्यपूर्ण घटनाक्रम सामने आते रहते हैं। ऐसे अन्तः द्वन्द्वों की, ग्रह क्लेशों की विभीषिकाओं में उलझा हुआ राष्ट्र कभी भी प्रगति नहीं कर सकता, उसकी सारी शक्ति उन्हीं विडम्बनाओं को सुलझाने, दबाने में नष्ट होती रहती हैं। प्रगति के जब समस्त साधन इन्हीं अव्यवस्थाओं, विस्फोटों से निपटने में लग जाएँ, तो आखिर प्रगति के लिए साधन बचेंगे ही कहाँ ?

विद्या एवं व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास

किसी देश की गरिमा उसकी भौतिक उपलब्धियों से नहीं आँकी जाती, वास्तविक सम्पदा तो वहाँ के चरित्रवान एवं आदर्शवादी नागरिक ही होते हैं। यही वास्तव में मणि-मणिमूल्य है। सच्ची समृद्धि इसी रत्नराशि की बहुलता पर निर्भर है। सम्पन्नता धन पर आधारित नहीं है, शक्ति

की माप आयुधो से नहीं बड़प्पन क्षेत्र विस्तार या जनसंख्या पर आधारित टिका हुआ नहीं है। किसी राष्ट्र का गौरव उसके लौह नागरिक ही होते हैं। पिछले दिनों जर्मनी, इजराईल, जापान आदि छोटे देशों ने ऐतिहासिक भूमिकाएँ निभाई है। और संसार को चमत्कृत किया है, उसमें वहाँ के नागरिकों का मनोबल की प्रधान था। किसी समय भारत विश्व का मुकुटमणि था। इसमें उसके अर्थ साधन कारण नहीं थे और ना ही शिक्षा, शिल्प, कौशल आदि का ही महत्व था। उनकी संस्कृति का जीवन यापन का रीति-नीति ही वह कारण थी जिससे भारत अपने आप में स्वर्ग समतुल्य बना, सतयुगी सुख-शान्ति से सम्पन्न रहा और समस्त संसार को ऊँचा उठाने आगे बढ़ाने में अद्भुत योगदान देता रहा। उत्कृष्ट व्यक्ति ही अपने देश, समाज एवं युग को धन्य बनाया करते हैं।

व्यक्ति का अस्तित्व गीली मिट्टी जैसा है। शिक्षा, संस्कृति एवं परिस्थितियाँ उसे बल देती हैं और मनुष्य उनसे प्रभावित होकर नीचे गिरता चला जाएगा। यह ठीक है कि आत्मा का अपना स्वरूप और बल है, वह परिस्थितियों को अपनी अन्तःशक्ति के आधार पर बदल सकता है। पर साथ ही इस मान्यता में इतना और जोड़ रखना चाहिए कि उस अन्तःशक्ति को सुविकसित करने के लिए वातावरण युक्त विद्या का खाद पानी भी दिया जाना चाहिए। बिना इन साधनों के अन्तःशक्ति का बीज अपने स्थान पर पड़ा भले ही रहे, वह उगेगा, बढ़ेगा और फूलेगा-फलेगा नहीं। अस्तु, आत्म के विकास का सीधा-सम्बन्ध मनुष्य की विचारणा, भावना एवं क्रिया शीलता में उत्कृष्टता का समावेश कर सकने वाली विद्या के साथ अविच्छिन्न रूप से जुड़ा हुआ है।

कहाँ गई वह विद्या ? विद्यालयों की बढ़ती बाढ़, अध्यापकों की बढ़ती भीड़ ने उसे कहाँ छुपा लिया ? आज के माहौल में इन प्रश्नों के उत्तर में इन्हीं सवालों की प्रतिध्वनि की गूँज सुनाई देती है। नहीं मिलता है वह समाधान जो भटकों को राह दिखा सके। इसे यों भी कहा जा सकता है कि समाधान तलासती राहें गलत हैं। इस पर चल कर भला कोई सन्तुष्ट भी कैसे हो ?

इसकी तलाश के लिए प्रख्यात अध्येता RN Pani (1987) अपनी कृति "Integral education thought and practice" में प्रशंसनीय प्रयास किया है। उनके अनुसार मानवी प्रकृति को प्रशिक्षित-रूपान्तरित करने के तीन सोपान हैं- शिक्षा, कला, विद्या। प्रत्येक सोपान परस्पर अन्योन्याश्रित होते हुए भी अपने में एक विद्या है। पहले दोनों की सार्थकता इसी में है कि तीसरे को उपलब्ध कर लें। ऐसा न होने पर इनकी स्थिती कुछ वैसी ही हो जाती है जैसी लंगड़े या लूले की। आज के स्कूल-कॉलेजों में पढ़ाई जाने वाली शिक्षा है जिसका उद्देश्य विभिन्न माध्यमों से बालकों का बौद्धिक विकास स्मृति अभिवर्द्धन करना है।

शिक्षा विज्ञानी टी.एम. श्री निवासीधारी, 1977 अपनी कृति "Concept of real education" में कहते हैं। ऐसी विद्या भला विद्यालयों में कहाँ उलटे वर्तमान स्थिति में विद्यालय विद्या के लय होने के आगार बन गए हैं। इसकी प्राप्ति एकांकी पुस्तकों के बल पर होती भी नहीं। अन्यथा ईसा के उपदेशों को अपने में संजोने वाली बाइबिल की प्रकाशित संस्था दुनियाँ में सबसे अधिक है। इसके बाद भी ईसा के उपदेशों को जीवन में धारण करने वाले नगण्य हैं। इसे तब तक सीखा

जाना दुष्कर है, जब तक सामने मानवी प्रकृति का ऐसा मर्मज्ञ न हो जिसने स्वयं का रूपांतरण कर लिया है।

“ शिक्षयते विद्योपादीयतेऽनयेति शिक्षा ” अर्थात् प्राणी जिस साधन प्रणाली से ज्ञान उपार्जित करता है उसी का नाम शिक्षा है। व्यक्ति या समाज के आभ्यान्तर विद्यमान स्वाभाविक मौलिक सत्ता का प्रस्फुटीकरण शिक्षा का लक्ष्य है। हाथी के तदनुरूप कला-कौशल सम्पन्न हाथी बनाना ही हाथी की उत्तम शिक्षा का लक्ष्य है। इसी प्रकार मनुष्य को पूर्व मानवता सम्पन्न बनाना मानव शिक्षा का उद्देश्य है। मनुष्य के भीतर जब मानवता के बीज विद्यमान है, तब उसे पूर्णमानव तक पहुँचाना, उसके चिन्तन, चरित्र, आचरण में गुण, कर्म, स्वभाव में उत्कृष्टता का स्फुटीकरण ही शिक्षा का मूल उद्देश्य होना चाहिए।

इस सम्बन्ध में पससमल त्वट (2010) में शिक्षक का महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व बताया है। शिक्षक में शिष्य को पूर्ण विद्वान बनाने की ही प्रवृत्ति नहीं होती, अपितु वह शिष्यों को किसी भी तरह के शास्त्रीय ज्ञान, जीवन जीने की कला से परिचित करा दे, उदात्त वृत्तियों को जीवन के सॉचे में ढालने की श्रद्धा भी जगा दे, तभी ज्ञान और चरित्र में एकता संभव हो पाएगी। व्यवहार के बिना तो ज्ञान भार स्वरूप है अतः शिक्षक आचरण से प्रखर एवं तेजस्वी व्यक्तित्व से सम्पन्न हुआ करता था। उत्तम आचार और विचार की शिक्षा पाने पर ही चरित्र बल और बौद्धिक प्रकर्ष आ सकता है वास्तव में शिक्षक डाई के सॉचे के समान है, जो अपने व्यक्तित्व एवं कृतित्व की छाप छात्रों पर डालकर अपने समान सिक्के गढ़ देते हैं। एक शिक्षक के पदच्युत होने पर समाज को बहुत बड़ी हानि होती है, क्योंकि उससे जुड़े हजारों छात्र पदच्युत हो जाते हैं।

आज की शिक्षा का उद्देश्य केवल अर्थ है और वह भी काम का पूरक पर प्राचीन काल में शिक्षा का लक्ष्य धर्म और मोक्ष था। उसके साथ अर्थ और काम भी सर्वथा उपेक्षित नहीं थे। यह सुविदित तथ्य है कि अर्थ और काम की उपासना से न शान्ति आ पाती है। और न सन्तोष। “ अशान्तस्य कुतः सुखम् ” गीता का यह उद्घोष किसे मान्य नहीं ? सुख ही तो सबका साध्य है और वह शान्ति के गर्भ से प्रसूत होता है, जो धर्म की उपासना से प्राप्य है। प्राचीनकाल में भी वित्त को मान्यता दी गई थी, किन्तु उससे कई गुनी महत्ता विद्या की थी। मनु ने स्पष्ट कहा है। वित्त, बन्धु, वय, कर्म और विद्या ये मान स्थान हैं, परन्तु इसमें उत्तरोत्तर पूर्व से गुरुत्तर हैं। अर्थात् इनमें भी शिक्षा की विशेष महत्ता है। यदि विद्या का उपार्जन ठीक-ठीक हो तो आज भी इस क्रम का व्यवहारिक रूप सामने आ सकता है। विद्या तो मनुष्य को इतने उच्च स्थान पर बिठा सकती है। कि बरबस सभी लोगों का मस्तक उसके सामने हो ही जाता है। प्रमाण-पत्रों की प्राप्ति ओर बात है विद्या की प्राप्ति कुछ ओर। यह प्रतिष्ठा विद्या से मिलती है, डिग्रियों से नहीं। विद्या के साथ तो डिग्रियों की दुर्दशा सर्वविदित है। विद्या जीवन जीने की कला है। उदारता, सौम्यता, नमनीयता, परामर्थ, परायणता, त्याग, सेवा, परोपकार, संवेदनशीलता, पुरुषार्थ, विद्या के ही रूपांतरण है। ‘आत्मवत् सर्वभूतेषु एवं वसुधैव कुटुम्बकम्’ के भाव विद्या की ही उत्पत्ति है। इसके जागरण से

मनुष्यता की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाती है और मनुष्य पशुता से उबरकर देवत्व की ओर बढ़ने लगती है। अतः शिक्षा के क्षेत्र में संजीवनी विद्या के प्रति अनुराग उत्पन्न करना परम आवश्यक है।

शिक्षा का उद्देश्य चंमण्क्त्र (2008) ने नौकरी नहीं अपितु विद्या का विस्तार करना है। देश के गौरव, अपनी प्रतिष्ठा और समाज के सुख समृद्धि में वृद्धि इसके दूसरे तत्व हैं। संयम और चरित्र की रक्षा इसके अपवाद हैं। धर्म की भावना को जागृत करना, अपने आपको सुधारना एवं स्वयं को सच्चरित्र बना लेना शिक्षा का श्रेय है। यदि इतना सम्भव हो गया तो समझना चाहिए तथा कथित शिक्षा रूपी काया में पुनः विद्या रूपी प्राण का वास हो गया। शिक्षा का उद्देश्य जीवन को सादा तथा विचारों को उन्नत बनाना होना चाहिए। प्रत्येक विद्यार्थी को अनगढ़ से सुगढ़ता की यात्रा की व्यवहारिक बातें सिखानी चाहिए तभी विद्यार्थी का सर्वांगीण विकास संभव है। यदि भारतीय संस्कृति के इतिहास का अवलोकन किया जाए तो विदेशों में ज्ञान चेतना जगाने के लिए पारिव्राजकों के लिए विश्वविद्यालय बने थे। वहाँ से परिपक्व होकर ऋषि कल्प-परिव्राजक देश-देशान्तरों में निकल जाते थे और जहाँ जिस प्रकार के सद्ज्ञान की आवश्यकता समझी जाती थी, वहाँ वैसा ही अध्यापन तन्त्र खड़ा कर देते थे। सर्वविदित है कि कुमारजीव जैसे महामनीषियों ने तक्षशिला विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त करके चीन, जापान, कोरिया, मंगोलिया, मंचूरिया आदि पूर्वोत्तर क्षेत्र में नवजीवन का संचार किया था। नालन्दा विश्वविद्यालय के महामनीषी कौटिल्य ने दक्षिण-पूर्व के क्षेत्र तिब्बत, वर्मा, मलेशिया, इण्डोनेशिया, कम्पूचिया, जावा, सुमाना आदि को देव संस्कृति का केन्द्र बना दिया था।

तत् चंजीं 2012—ने अपने शोध विषयान्तर्गत टंसनम बतपेपे— के अन्तर्गत कुछ बातें की हैं जो अग्र लिखित हैं: समय का कुचक ही कहना चाहिए कि आज वह समूचा तंत्र पुरातन इमारतों के ध्वंसावशेष के रूप में जहाँ तहाँ अपने पूर्व अस्तित्व का परिचय भर देता है। लोक रुचि उस प्रसंग से हट गयी। न पुरोहित रहे, न लोक मानस को जीवन्त जाग्रत रखने वाले पुरोधा। साधु ब्राह्मणों की संख्या तो लाखों करोड़ों में है पर जिन्हें अपने शाश्वत कर्तव्यों का ज्ञान है, तथा उस प्रकार का कुछ करते भी हैं उनकी संख्या अंगुलियों पर गिनने लायक ही मानी जा सकती है। युग ऋषियों का उत्पादन निर्माण कहाँ होता है,? उस स्थान को ढूँढ पाना भी शोध का विषय बन गया है। न वैसा कुछ पढ़ने में किसी को रुचि है और न पढ़ाने में। कारण नौकरी व्यवस्था आदि में प्रचुर धन कमा लेने की ललक हर किसी को घेरे हुए है। अध्यापक और छात्र भी इसी प्रसंग को पढ़ते-पढ़ाते हैं।

उपसंहार

चिरपुरातन को पुनर्जीवित करने के लिए सतयुग की वापसी जैसा भागीरथ प्रयत्न अपने एकांकी बलबूते पर करना होगा। इसके लिए भारत में आज भी कई आश्रम ऐसे हैं जहाँ विद्या परक शिक्षा का अमृतपान विद्यार्थियों को कराया जाता है। शान्तिकुन्ज, शान्तिनिकेतन, योगदासोसाइटी, साथ ही अरविन्द आश्रम, दिव्यजीवन संघ में शिक्षा को पुनर्जीवित करने के सूत्र बताए जा रहे

हैं। "विद्या की गरिमा का महत्व बताते हुए आप्त जनों ने बहुत कुछ कहा है— विद्यात्मृतमसुते सा विद्या ददाति विनयम्" आदि—आदि मनुष्य के गुण, कर्म, स्वभाव में चिन्तन चरित्र और व्यवहार में जो उत्कृष्ट आदर्श वादिता का समावेश कर सके वही विद्या है। संजीवनी विद्या भी इसी का नाम है। कई व्याख्याकार इसे जीवन जीने की कला कहते हैं। इसी के साथ सुख—शान्ति और प्रगति के सभी सूक्ष्म तंतु जुड़े हुए माने जाते हैं। इसकी उपेक्षा करने पर न भौतिक प्रगति संभव होती है और न आध्यात्मिक उन्नयन की बात बनती है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

- Page, DRJ (2008). Virtue Ethics and Peace Education, Information Age Publishing, INC, Page No. 23
- Pani, RN (1987). Aims of education and life identicon integral education thouget and practice, APH publisling corporation ,New Delhi Page No.22
- Pathak, RPC (2012). Value crisis, Developmet and problem of Indian education, Pearson Publication New Delhi, Page No. 230
- Salomon, G& Nevo, B. (2002). Friendship,contect, and peare education Peace 'Edu-cation', Lawrance erlabbaum associates, Publishers, Mahwah,
- Shri Nivasdhari, TN (1977). Concept real trends and of edution concept of real education the review 83 page no. 123
- Willey, RDV (2010). Teacher participation in education counselling' the rode of the teacher in the guidance proglam, mcknight & mcknight California, Page No.459
- आचार्य श्री राम शर्मा (1998) " सा विद्या या विमुक्तये "शिक्षा एवं विद्या", अखण्ड ज्योति संस्थान, घियामण्डी मथुरा, पृ. 5^ण3
- पण्ड्या, प्रणव (2013) शिक्षा प्रणाली के पंचशील , अखण्ड ज्योति, अक्टू., पृ.5
- पण्ड्या, प्रणव (2014) सुसंस्कारी बनायें, वही हैं शिक्षा, अखण्ड ज्योति, अक्टू., पृ.25
- पण्ड्या, प्रणव (2015) कैसे समग्र विकास करता है भारतीय मनोविज्ञान, अखण्ड ज्योति नवम्बर, 2015 पृ.18